International Journal of Advanced Multidisciplinary Research in Social Sciences and Humanities
ISSN: 0000-0000
https://ijamrssh.org/
A Peer-Reviewed, Open Access, Multidisciplinary Academic Journal

Volume-1, Issue-1 2026, Page No. 26-29 Received: 04-07-2026, Accepted: 16-07-2026; Published: 25-07-2026

21वीं सदी की उर्दू तथा हिंदी ग़ज़लों में जन प्रतिरोध का स्वर

फिरदौस

हिंदी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय,अलीगढ़

Abstract

इक्कीसवीं सदी सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा तकनीकी परिवर्तनों की सदी है, जिसने मानव जीवन के साथ-साथ साहित्य की विषयवस्तु और अभिव्यक्ति को भी गहराई से प्रभावित किया है। प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य इक्कीसवीं सदी की हिंदी एवं उर्दू ग़ज़लों में समकालीन सामाजिक यथार्थ के चित्रण का विश्लेषण करना है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि आधुनिक ग़ज़ल पारंपरिक प्रेम एवं श्रृंगार की सीमाओं से आगे बढ़कर जनजीवन की समस्याओं, सामाजिक विषमताओं, राजनीतिक भ्रष्टाचार, सांप्रदायिकता, उपभोक्तावाद, बेरोज़गारी, नैतिक मूल्यों के क्षरण तथा लोकतांत्रिक व्यवस्था की विसंगतियों को प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त करती है। वैश्वीकरण और तकनीकी विकास के कारण उत्पन्न नई चुनौतियों के साथ-साथ पर्यावरणीय संकट, आर्थिक असमानता और मानवीय संवेदनाओं के ह्रास को भी समकालीन ग़ज़लकारों ने अपनी रचनाओं का विषय बनाया है। दुष्यंत कुमार, बशीर बद्र, राहत इंदौरी, अदम गोंडवी, निदा फ़ाज़ली तथा अन्य प्रमुख ग़ज़लकारों की रचनाओं के माध्यम से यह अध्ययन दर्शाता है कि हिंदी और उर्दू ग़ज़लें केवल साहित्यिक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना, प्रतिरोध और जनपक्षधरता की सशक्त विधा हैं। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि इक्कीसवीं सदी की ग़ज़लें समकालीन समाज के यथार्थ का प्रामाणिक दस्तावेज़ प्रस्तुत करते हुए मानवीय मूल्यों, सामाजिक न्याय तथा लोकतांत्रिक चेतना को सुदृढ़ करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

Keywords : इक्कीसवीं सदी, हिंदी ग़ज़ल, उर्दू ग़ज़ल, समकालीन समाज, सामाजिक यथार्थ, जनचेतना, वैश्वीकरण, प्रतिरोध, मानवीय मूल्य, लोकतांत्रिक चेतना।

समसामयिक परिवेश के प्रति जागरूकता तथा समकालीन समाज के जन-जीवन की यथार्थ पीड़ा को वाणी प्रदान करने की ललक से साहित्य कभी अछूता नहीं रहा है। वर्तमान समय में व्याप्त अंतर्विरोधों तथा विषमताओं को नवीन शिल्पगत संरचना के साथ अभिव्यंजित करने का कार्य 21वीं सदी के हिंदी ग़ज़लकारों ने किया। 21वीं सदी की पृष्ठभूमि पर यदि विचार किया जाये तो ज्ञात होता है कि यह आधुनिक विचारों, त्वरित परिवर्तनों तथा औद्योगिकी से प्रौद्योगिकी की प्रस्थान सदी है। 20वीं सदी के अंतिम दशक में सोवियत संघ का विघटन, मंडल आयोग की राजनीति, बाबरी विध्वंस, इंटरनेट का उद्भव, सूचना-क्रान्ति के विस्तार ने समय तथा समाज में नवीन एवं विलक्षण प्रवृत्ति को जन्म दिया। स्वतंत्रता के लगभग 79 वर्षों की दीर्घ यात्रा के बाद भी आज इस वैज्ञानिक युग में नैतिकता के बदलते मानदंड, जीवन जीने के परिवर्तित ढंग के कारण मानवीय मूल्यों का ह्रास, बढती साम्प्रदायिकता, सामाजिक सद्भावना का अभाव, नक्सलवाद, आतंकवाद, जड़ होती रूढ़िवादी मान्यताओं के प्रति निषेधात्मक प्रवृत्ति की अनुभवशील अभिव्यक्ति 21वीं सदी की उर्दू- हिंदी ग़ज़लों में परिलक्षित होती है।

ग़ज़ल मूलतः श्रृंगारिक भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम रही है, जो अपनी पूर्व प्रचलित परंपरा के आधार पर प्रेम तथा सौन्दर्य की परिधि तक सीमित थी। परन्तु जैसी-जैसे समाज में राजनीतिक तथा आर्थिक परिवर्तन की लहर उठी,

ग़ज़ल समयगत सच्चाई का आईना बन गयी। वैश्वीकरण के कारण इक्कीसवीं सदी में कई विरोधाभास उत्पन्न हुए| एक ओर वैज्ञानिक प्रगति ने मनुष्य को अंतरिक्ष की यात्रा कराई, तो दूसरी ओर आधुनिकता के नाम पर भूख, गरीबी, बेरोजगारी, बीमारी तथा युद्ध जैसे विषयों पर धार्मिक अतिवाद तथा हिंसा देखने को मिलता है| उर्दू साहित्य में ग़ज़ल की एक सुदीर्घ परम्परा है, जिसके कथ्य में समयानुसार परिवर्तन परिलक्षित होता है| बीसवीं शताब्दी की अंतिम दशक में उर्दू ग़ज़ल विभिन्न अनुभवों को समेट कर इक्कीसवीं सदी में पदार्पण करती है| हसन असकर काज़मी इस विषय में लिखते हैं- "अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक जटिलताओं, राष्ट्र के उत्थान-पतन के परिदृश्य, नवोदित क्षेत्रों की सांस्कृतिक हलचलों, पूर्व-पश्चिम के मध्य वैचारिक संघर्ष तथा मानवीय संवेदनाओं में जन्म लेने याली समस्याओं को तत्कालीन ग़ज़ल ने प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त किया है| इसके अतिरिक्त संघर्षशील परिस्थितियों में आशा-निराशा, शब्दों तथा ध्वनियों से रचित उस संभाव्य संसार की झलक भी मिलती है, जहां मानवीय अनुभूति के विविध आयाम उपस्थित है| ग़ज़लकार अपनी सामाजिक, ऐतिहासिक स्थितियों में पाठक की अपेक्षाओं से आगे बढ़कर अपने अस्तित्व की जटिलताओं को विस्तार दिया है| परिणामस्वरूप, प्रतिस्पर्धात्मक भावनाओं के प्रभावों को भी स्वीकार किया गया है, जिसने समाज को बहुआयामी रूप से प्रभावित किया है|" वैश्विक स्तर पर सामाजिक एवं राजनीतिक चुनौतियों एवं आर्थिक स्थिति में परिवर्तन की छवि उर्दू समकालीन ग़ज़ल में विद्यमान है| जिसकी अभिव्यक्ति अहमद फ़राज़, मुहम्मद अल्वी, ज़फर इक़बाल, निदा फ़ाज़ली, बशीर बद्र, शाकिब जलाली तथा राहत इन्दौरी आदि के लेखन में दृष्टव्य है| । वर्तमान समय की त्रासदपूर्ण यथार्थ का चित्रण करते हुए ग़ज़लकार बशीर बद्र लिखते है-

"आहन में ढलती जाएगी इक्कीसवीं सदी
फिर भी ग़ज़ल सुनाएगी इक्कीसवीं सदी
जल कर जो राख हो गई दंगों में इस बरस
उन झुग्गियों में आएगी इक्कीसवीं सदी
तहज़ीब के लिबास उतर जाएँगे जनाब
डॉलर में यूँ नचाएगी इक्कीसवीं सदी"[2]

उर्दू साहित्य की ग़ज़ल की लोकप्रियता का प्रभाव हिंदी साहित्य पर भी पड़ा| हिन्दी ग़ज़ल ने उर्दू और फारसी की पूर्व-प्रचलित प्रवृत्ति इश्क मिजाज़ी और रोमानियत को सामाजिक सरोकारों से जोड़कर उसमें जीवन के वास्तविक रूपों एवं तल्ख हकीकत के रंग को भरने का महत्वपूर्ण प्रयास किया है। हिन्दी ग़ज़ल परम्परागत ग़ज़लों की भाँति व्यक्तिपरक और रोमानी नहीं रह गई है बल्कि आधुनिक सामाजिक भावबोध की संवाहिका के रूप में समाज का प्रतिनिधित्व करती दिखाई देतीहै। काव्य की इस अनुपम विधा ग़ज़ल को हिन्दी ने अपनी काव्य प्रतिभा और अभिव्यक्ति की साधना से समृद्ध कर एक नया आदर्श प्रस्तुत किया है। अब हिंदी ग़ज़लों में प्रतिरोध के स्वर स्पष्ट रूप में दर्शनीय है, यह सत्ता के प्रतिरोध का पर्याय बन गयी है। "हिन्दी ग़ज़ल के अधिकांश ग़ज़लकार आधुनिक विचारों और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सम्पन्न हैं। उनके केंद्रीय चिंतन की दिशा प्रगतिशील और जनवादी हैं। उनमें से कई मार्क्सवादी विचारधारा में भी विश्वास रखने वाले हैं। इसलिए उनकी ग़ज़लों में असमानता की खाइयों को गहराने वाली, गरीबों को और गरीब तथा अमीरों को और अमीर बनाने वाली, अपनी सत्ता को बनाए रखने के लिए अनेक काले क़ानूनों एवं दमनात्मक नीतियों को अपनाने वाली, मेहनतकश वर्ग को जाति, धर्म, संप्रदाय, पंथ, भाषा, क्षेत्र आदि के नाम पर बांटने वाली, प्रभु वर्ग का पोषण-संरक्षण करने वाली तथा जनविरोधी, प्रगति विरोधी व्यवस्था का असली चेहरा प्रस्तुत हुआ है।"[3] संभवतः हिंदी में ग़ज़ल की परम्परागत कथ्य में परिवर्तन कर उसे राजनीतिक तेवर प्रदान करने वाले दुष्यंत कुमार की अहम भूमिका है। दुष्यंत कुमार ने जिस इंक़लाब की मशाल उठाई, वह आज 21वी सदी के ग़ज़लकारों के हाथों में दिखाई देती है। दुष्यंत के बाद हिंदी ग़ज़ल में समसामयिक जीवन संघर्ष को बड़ी ही सूक्ष्मता के साथ चित्रित करने की श्रेणी में ज़हीर कुरैशी, चंद्रसेन विराट, डॉ. कुंअर बेचैन, बालस्वरूप राही, शेरगंज गर्ग, ज्ञान प्रकाश विवेक, रामकुमार कृषक, हनुमंत नायडू, अदम गोंडवी, राजेश रेड्डी, वशिष्ठ अनूप आदि ग़ज़लकारों का नाम विशेष रूप से लिया जाता है।

वर्तमान युग की सबसे बड़ी त्रासदी नैतिक मूल्यों का क्षरण है। आत्मकेंद्रित प्रवृत्ति के कारण मनुष्य दिन-प्रतिदिन स्वार्थलोलुप तथा संवेदनहीन होता जा रहा है। पारस्परिक प्रेम, सहानुभूति, सहयोग तथा मानवीयता से उसका कोई सरोकार नहीं रह गया है। मानव जीवन में घुले अमानवीयता के विष ने इंसान को इंसान नहीं रहने दिया है, उसे बेईमानी, मक्कारी का जीता-जागता नमूना बना दिया है। ऐसी विषम परिस्थितियों में ग़ज़लकार प्रेम व सौहार्द का उद्बोधन करते हुए कहते हैं कि-

"मुहब्बत बाँट दो दुनिया में जितनी बाँट सकते हो,
छलक जाने पे भी सागर सदा सागर ही रहता है।"[4]

जीवन की विषम परिस्थितियों में भी निरंतर संघर्षरत तथा संवेदनशीलता बनाये रखने की प्रेरणा देते हुए उर्दू के प्रसिद्ध शायर राहत इन्दौरी जी लिखते हैं-

"आँख में पानी रखो होंठों पे चिंगारी रखो
ज़िंदा रहना है तो तरकीबें बहुत सारी रखो|"[5]

तत्कालीन समय का राजनीतिक परिदृश्य इतना दूषित हो गया है कि नेताओं के लिए सत्ता प्राप्ति ही एकमात्र लक्ष्य बन कर रह गया है। अब राजनीति सहयोग का नहीं बल्कि प्रतिरोध का अंग बन गया है। आक्रामक, असहिष्णुता तथा घृणा जैसी प्रवृत्ति आज की नीति व्यवस्था में प्रमुख गुण के रूप में विद्यमान है। चुनावरुपी प्रतियोगिता में विजय प्राप्त करने हेतु देश के राजनेता किसी भी सीमा को पार कर सकते है। वोट बैंक की नीति के लिए अपराध के साथ-साथ धनबल एवं शक्तिबल का सहारा लिया जा रहा है। भारतीय प्रजातंत्र नेतातंत्र बन गया है, संसद का अवमूल्यन, तथा सत्ता-व्यवस्था के प्रति विरोध प्रकट करते हुए हिंदी ग़ज़लकार कमलेश कमल की निम्नलिखित पंक्तियाँ राजनीतिक छल-छद्म एवं राजनेताओं की चुप्पी का चित्रण करती है-

"खून हो रहे अरमानों के और रो रहा आम आदमी,

खूनी आतंकी है या खाकी पहरे हैं देख।

डाले हैं वो डेरा कबसे व्यथा सुनाने को,

मगर कुर्सियों पे शायद गूंगे-बहरे हैं देख।"[6]

इस राजनीतिक षड़यंत्र में लोकतंत्र की हत्या हो रही है, जिसमें आम जन मानस रक्तरंजित हो रहा है। एक ओर देश गरीबी, महंगाई तथा आर्थिक मंदी की दलदल में धंसता जा रहा है, तो दूसरी ओर जनता बेरोजगारी व भ्रष्टाचार की मार से त्रस्त है। जनतांत्रिक व्यवस्था में श्रमजीवी वर्ग केवल पसीना बहाता है, उसके हाथ श्रम का कोई मोल नहीं आता, व्यवस्था के खोखले व अखबारी दावों तथा लोकतंत्र की आड़ में तानाशाही एवं दमनकारी रुप का चित्रण करते हुए अदम गोंडवी लिखते हैं -

"तुम्हारी फाइलों में गाँव का मौसम गुलाबी है,

मगर ये आँकड़े झूठे हैं, ये दावा किताबी है।

उधर जम्हूरियत की ढ़ोल पीटे जा रहे हैं वो,

इधर परदे के पीछे बर्बरियत है, नवाबी है।"[7]

भूमंडलीकरण तथा निजीकरण के ताने-बाने से बुनी नई उदारवादी आर्थिक व्यवस्था ने आम आदमी को रोटी, कपड़ा तथा मकान जैसी मूलभूत आवश्यकताओं से वंचित कर दिया है। बिजली, पानी, दवाई सब केवल आंकड़ों तक सीमित है। किसी भी प्रकार के अभाव के उपचार के नाम पर जनता को केवल आश्वासन का लेप ही उपलब्ध है। विकास तथा प्रगति के नाम पर केवल पूंजीपतियों का फायदा हुआ है। "समाज की उत्पादक शक्तियों के जीवन में प्रतिगामिता में इजाफा हुआ है। उत्पादन के उपकरणों में तेज़ी से बदलाव आया है। सूचना, संचार और परिवहन के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन की लहर आई हुई है। ये तीन क्षेत्र हैं जहाँ पूंजीपति वर्ग बेतहाशा मुनाफा कमा रहा है। इन क्षेत्रों के परिवर्तन ने शोषण की गति में कई गुना इजाफा किया है। 'अन्य' तथा 'हाशिये के समूह और भी ज्यादा पिछड़ गए हैं।"[8] संभवतः अभिव्यक्ति के हज़ार खतरे उठाते हुए ग़ज़लकार डॉ हनुमंत नायडू व्यवस्था की विद्रूपताओं को बेनकाब करते हुए कहते हैं कि

"कपड़ों से नग्नता को छिपाना कठिन हुआ,

मिलते हैं लोग अब यहाँ दीवार ओढ़कर।

भाषण छपा हैं देश में खुशियाँ बरस रही,

लेटे हैं खाली पेट हम अखबार ओढ़कर।"[9]

आधुनिक लोकतंत्र की संरचना में स्वतंत्रता और समानता का विशेष महत्त्व है। बेहतर व्यवस्था के निर्माण में सामाजिक असमानता अवरोध की स्थिति उत्पन्न करती है। अस्पृश्यता का उन्मूलन, वर्ग, जाति तथा लिंग भेद का समूल उच्चाटन करना, नारी को समानता की स्थिति में लाये बिना किसी भी राष्ट्र के विकासित होने की संभावना संश्यास्पद है। दुष्यंत कुमार का एक प्रसिद्ध शेर "यहाँ तक आते-आते सुख जाती हैं कई नदियाँ/ मुझे मालूम है पानी कहाँ ठहरा हुआ होगा"[10] भारत की विविध जातीय और वर्गीय संरचना के मध्य असमानता तथा सरकारी योजनाओं के यथार्थ को उजागर करती है। तैंतीस प्रतिशत महिला आरक्षण का बिल पारित होने पर अधिकतर प्रत्याशी अपनी पत्नी के नाम पर चुनाव लड़ रहे हैं, महिलाओं के जिस व्यक्तित्व के विकास की अपेक्षा की गई वह अत्यंत चिंताजनक दिखाई दे रही है। नारी सशक्तिकरण के नाम पर योजनाएं बनाकर जो खानापूर्ति की गयी उस वास्तविकता का चित्रण डॉ. डी. एम. मिश्र इस प्रकार करते हैं-

"गाँवों का उत्थान देखकर आया हूँ,

मुखिया का दालान देख कर आया हूँ|

लछमिनिया थी चुनी गयी परधान मगर

उसका 'पती-प्रधान' देखकर आया हूँ।"[11]

21वीं सदी की हिंदी ग़ज़लों में न केवल जन सरोकार तथा विसंगतियों को रेखांकित किया गया, बल्कि इस वैज्ञानिक युग में समाप्त हो रही गाँव की हरियाली, नदी की निर्मलता, वृक्षों की अंधाधुंध कटाई, तथा जंगलों के समाप्त होते अस्तित्व पर भी गज़लकार चिंता व्यक्त करते हैं- "मज़हब, ज़मीन, भाषा एक मुस्तकिल तमाशा/अब खेल टोपियों का हर एक गाम जंगल।"[12] इस उपभोक्तावादी संस्कृति ने धर्म का बाजारीकरण कर दिया, अब धर्म आध्यात्मिक मूल्यों के लिए नहीं अपितु सामाजिक पहचान तथा प्रतिष्ठा के लिए अपनाया जाने लगा है। त्याग, करुणा एवं संयम जैसे नैतिक मूल्यों का क्षरण हुआ, धर्म को सत्ता और लाभ से जोड़ दिया गया। हिंदी ग़ज़लकार धर्म के नाम पर सियासत करने वालों की कड़ी आलोचना करते हुए कहते है-

"इस जगह मंदिर बने या फिर कोई मस्जिद बने,

किसकी है इसमें सियासत इतना बतलाएँ हुजूर ।"[13]

"आदमी के खून में पहली सी वह हलचल कहाँ,

दूसरों के दर्द से इंसानियत घायल कहाँ"[14]

वर्तमान परिदृश्य में समस्या धार्मिकता नहीं बल्कि धर्मांधता की है, जिसके कारण देश में साम्प्रदायिकता तथा आतंकवाद जैसी भयावह स्थितियाँ निरंतर का बढ़ती जा रही है। ज्ञान प्रकाश विवेक के शब्दों में देश की स्थिति का अंकन इस प्रकार है-

तेज़ चाकू कर लिए चमका के रख ली लाठियाँ,

धार्मिक उत्सव की सारी हो चुकी तैयारियाँ।"[15]

वस्तुतः इक्कीसवीं सदी की उर्दू तथा हिंदी ग़ज़लें समाजोन्मुख चेतना का विस्तार करती हुई समसामयिक विषयों को वास्तविकता के साथ प्रतिबिंबित करती हैं। समकालीन ग़ज़लों में समाज में लगातार बढ़ रही असमानता, सामाजिक सहिष्णुता का गिरता स्तर, श्रमिकों की खोखली काया का चित्रण, लोकतान्त्रिक मूल्यों का विचलन, सत्ता तथा सत्ताधारियों के विकृत चरित्र, धार्मिक आस्थाओं का दुरुपयोग, उपभोक्तावाद, बाज़ार का आतंकी विस्तार तथा उसके पीछे निरंतर असहाय तथा अकेला होता मनुष्य तथा व्यवस्था के विकृत रुप को बड़े ही बेबाक ढंग से रुपायित किया गया है | ये ग़ज़लें समसामयिक जीवन संघर्ष में जनपक्षीय होकर अपनी कलात्मक सौष्ठव तथा

मानवीय उदात्तता के आधार पर अनंत आत्मविश्वास के साथ प्रतिरोधी भावना को संजोये हुए समय-पटल पर निरंतर आगे बढ़ते यह उद्बोधन करती हैं कि-

"कैसे आकाश में सुराख नहीं हो सकता,
एक पत्थर तो तबीयत से उछालो यारों।"[16]

सन्दर्भ सूची-

1. इक्कीसवीं सदी में उर्दू ग़ज़ल, मंसूर खुश्तर, पृष्ठ सं.- 119, ikkiswin sadi mein urdu ghazal | Rekhta 29/12/2025
2. आहन में ढलती जाएगी इक्कीसवीं सदी - ग़ज़ल 29/12/2025
3. सिन्हा, अनिरुद्ध, आधुनिक हिंदी ग़ज़ल सामूहिक संवेगों का आख्यान, संस्करण-प्रथम (2019), समन्वय प्रकाशन- गाजियाबाद, पृष्ठ सं.- 197
4. अग्रवाल, डॉ. गिरिराज शरण, प्रतिनिधि ग़ज़लें, संस्करण- प्रथम (2024), हिंदी साहित्य निकेतन, बिहार, पृष्ठ सं.- 111
5. https://www.rekhta.org/ghazals/aankh-men-paanii-rakho-honton-pe-chingaarii-rakho-rahat-indori-ghazal
6. गर्ग, शेरगंज, तीसरा ग़ज़ल शतक, संस्करण- 2013, किताबघर प्रकाशन, पृष्ठ सं. – 42
7. निश्चल,ओम, धरती की सतह पर, प्रथम संस्करण, 2023, सर्वभाषा प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ सं.- 55
8. चतुर्वेदी, जगदीश, लेखक,जनतंत्र और राष्ट्रवाद, संस्करण- प्रथम (2022), अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्युटर्स, पृष्ठ सं. – 464
9. मुजावर, सरदार, हिंदी ग़ज़ल ग़ज़लकारों की नज़र में, संस्करण- दूसरा (2024), वाणी प्रकाशन, पृष्ठ सं. – 65
10. कुमार दुष्यंत, साये में धूप, संस्करण-71वाँ (2021), राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, पृष्ठ सं. – 15
11. समीप, हरेराम, चुने हुए शेर: डी एम मिश्र, संस्करण- प्रथम (2024), लिटिल बर्ड पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, पृष्ठ सं. –41SS
12. कौल, कृष्णगोपाल, ग़ज़ल सप्तक, संस्करण- प्रथम (2015), सामायिक प्रकाशन, पृष्ठ सं.- 126